पर्यावरणीय परिवर्तन, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य

विधिभूषण मौर्य*, मोहम्मद आकिफ तौफीक**

सारांश

पर्यावरण उन सभी दशाओं, संगठन एव प्रभावों का समग्र है, जो किसी जीव या प्रजाति के उद्भव विकास एवं मृत्यु को प्रभावित करती है, समस्त प्राणी जीवशास्त्रीय स्तर पर पर्यावरण से अंतः क्रिया करते हैं, फलस्वरूप उसकी मूलभूत आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में पर्यावरण मदद करता है। लेकिन मानव समाज तीव्र औद्योगिकरण के माध्यम से जिस विकास की अंधी दौड़ में आगे बढ़ा है उसने स्वच्छ पर्यावरण की स्थिरता पर ही प्रश्नचिन्ह खड़ा किया है ? तेजी से हो रहे जलवायु परिवर्तन की समस्या ने 'हवा–पानी' रहित खतरनाक भविष्य का शंखनाद कर दिया है। समय रहते यदि समाधान नहीं किया गया तो आने वाला कल अकल्पनीय होगा। डब्लयू0डब्ल्यू0एफ0 की एक रिपोर्ट के अनुसार अगले 50 वर्ष में दुनिया किस स्थिति में पहुंचेगी वह अकल्पनीय है। मानव युद्ध से अधिक खतरा ग्लोबल वार्मिंग से है, इसलिये पर्यावरण रक्षा के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समस्त राष्ट्रों के मध्य बेहतर समन्वय की जरूरत है।

इन्हीं चिन्ताओं को ध्यान में रखते हुये 1960 से लेकर अब तक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न प्रयास किये गये हैं। जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सन् 2000 ई0 में आयोजित सहस्त्राब्दी शिखर सम्मेलन में 2015 तक के लिये 8 वैश्विक विकास लक्ष्य निर्धारित किये गये, जिन्हें सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य Millenium Development Goals (MDGs) के नाम से चिन्हित किया गया। इन लक्ष्यों के माध्यम से जहाँ एक ओर मानव समाज की मूलभूत आवश्यकताओं को प्राप्त करने का संकल्प लिया गया है वहीं पर्यावरणीय सतत् एवं वैश्विक विकास के लिये अपेक्षित सद्भावना पूर्ण संबंधों को स्थापित करने का संकल्प लिया गया है।

सहस्त्राब्दी विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में कुछ विडम्बनायें भी दृष्टिगत् हुई है, पहला विश्व की बड़ी आबादी को स्वस्थ रहने के लिये पर्याप्त भोजन प्राप्त नहीं होता। इन लोगों को उचित भोजन उपलब्ध कराने के लिए खाद्यान्नों के उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता के मद्देनजर पर्यावरण प्रतिकूल गतिविधियाँ जहाँ एक ओर खाद्यान्न उत्पादन की समस्या को तात्कालिक रूप से हल करती हैं, वहीं दूसरी ओर पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने में व्यापक भूमिका निभाती है। ऐसी परिस्थिति में पर्यावरण के अनुकूल ''ईको फ्रेंडली'' तकनीकि का प्रयोग करना बेहतर होगा। लेकिन विकसित देश निहित स्वार्थों के चलते पर्यावरण की समस्या को नजर–अंदाज कर विकासशील देशों को ऐसी तकनीक देने में हिचकिचाते हैं। जबकि सतत् विकास की अवधारणा को जमीनी हकीकत पर लाने के लिये राष्ट्रों के मध्य तकनीकों का हस्तांतरण की दिशा में गतिशीलता होनी चाहिये, तभी हम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की दिशा में 'अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग या वैश्विक साझेदारी' बढ़ाने के स्वप्न को साकार कर सकेंगे। आज वैश्विक चुनौतियों का सामना करने के लिये राष्ट्रों के मध्य रचनात्मक सम्बन्ध विकसित करना होगा एवं वैश्विक समुदाय को 'खगोलीय मानव' या 'विश्व सभ्य समाज' की ओर उन्मुख करना होगा, ताकि एक न्यायपूर्ण विश्व एवं भेदभाव रहित पर्यावरणीय व्यवस्था की स्थापना की जा सके और हम शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व का आदर्श प्राप्त कर सके।

पर्यावरण शब्द को The Universal Encyclopaedia में इस प्रकार परिभाषित किया गया है– ''उन सभी दशाओं, संगठन एवं प्रभावों का समग्र है, जो किसी जीव या प्रजाति के उद्भव, विकास एवं मृत्यु को प्रभावित करती है, पर्यावरण कहलाती है।'' समाजशास्त्रीय दृष्टि से मानव परिस्थितिकी के अध्ययन की शुरूआत का श्रेय पार्क, वर्गेस हंटिंग्टन एवं मैकेंजी को जाता है। जल ही जीवन है, जहाँ जीवन है वहीं समाज है। प्राणी मात्र सब जीवशास्त्रीय स्तर पर पर्यावरण से अन्तः क्रिया करते हैं जिससे परिस्थितिकी तन्त्र (Ecosystem) जटिल जाल के रूप में बनता है। मानव पर्यावरण के साथ परस्पर अन्तः क्रिया करता है, फलस्वरूप उसकी मूलभूत आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में पर्यावरण मदद करता है। पर्यावरण के अन्तर्गत वायुमण्डल, नदियाँ, झीलें, जलप्रपात, समुद्र, वन, पौधे, रेगिस्तान, पर्वत व मैदान आदि समाहित हैं। जिनकी उपयोगिता जीवन निर्वाह के लिये अनेक रूपों में परिलक्षित होती है।

वर्तमान समय में मानव समाज द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण को विनिष्ट करने वाली गतिविधियों को इस ढंग से प्रयोग में लाया गया है जिससे सम्पूर्ण मानवता को ही नष्ट–भ्रष्ट करने वाली स्थिति पैदा हो गयी है। वस्तुतः पर्यावरणीय परिवर्तन

---

*असिस्टेट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान विभाग, डी0एस0एन0 (पी0जी0) कालेज, उन्नाव

**असिस्टेट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, समथर, झांसी

औसत मौसमी दशाओं के प्रतिरूप (पैटर्न) में ऐतिहासिक रूप से बदलाव आने को कहते हैं। जलवायुविक दशाओं में यह बदलाव प्राकृतिक भी हो सकता है और मानव के क्रियाकलापों का परिणाम भी। ग्रीन हाउस गैसों का प्रभाव और वैश्विक तापन को मनुष्य की क्रियाओं का परिणाम माना जा रहा है जो औद्योगिक क्रान्ति के बाद मनुष्य द्वारा उद्योगों से निःसृत कार्बन–डाईऑक्साइड गैसों के वायुमण्डल में अधिक मात्रा में बढ़ जाने का परिणाम है। पर्यावरणीय परिवर्तन के खतरों के बारे में वैज्ञानिक लगातार आगाह करते आ रहे हैं।

तेजी से हो रहे जलवायु परिवर्तन की समस्या 'हवा–पानी' रहित खतरनाक भविष्य का शंखनाद कर दिया है। समय रहते यदि समाधान नहीं किया गया तो आने वाला कल अकल्पनीय होगा। यह समस्या अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का रूप ले चुकी है। विकसित या विकासशील देश ही नहीं अपितु विश्व के सभी देश इसकी चपेट में हैं। इसलिए विश्व के तमाम देश व संयुक्त राष्ट्रसंघ इस समस्या से निजात पाने के लिये गम्भीरता से विचार कर रहे हैं।

डब्ल्यू0डब्ल्यू0एफ0 की एक रिपोर्ट के अनुसार अगले 50 वर्ष में दुनियाँ उजड़ जायेगी। यह महज किसी ज्योतिषी की भविष्यवाणी नहीं है, बल्कि पर्यावरण से जुड़े ख्याति प्राप्त वैज्ञानिकों की है। वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि जिस रफ्तार से दुनियाँ के संसाधनों की लूट हो रही है, उसके हिसाब से पचास साल के अन्दर दुनियाँ की आबादी की जरूरतों को मुहैया कराने के लिये पृथ्वी जैसे कम से कम दो और गृहों पर कब्जा करने की आवश्यकता पड़ जायेगी। इसके लिये सबसे अधिक दोषी अमेरिका को बताया गया है। इंग्लैण्ड के समाचार पत्र ''आब्जर्वर'' की बेबसाइड के अनुसार वैज्ञानिकों ने कहा है कि संसाधनों के दोहन की रफ्तार अगर ऐसी ही रही तो समुद्रों से मछलियाँ गायब हो जायेंगी और कार्बन डाइऑक्साइड सोखने वाले सारे जंगल उजड़ जायेंगे। इसके बाद शुद्ध पानी का भयानक संकट छा जायेगा। ऐसी स्थिति में हमें या तो अपनी लाइफ स्टाइल को बदलना होगा या फिर पृथ्वी के जैसे दो गृहों की तलाश कर उन पर कब्जे की तैयारी शुरू कर देनी चाहिए।

हाल ही में अमेरिका में सहस्त्राब्दी पारितन्त्र मूल्यांकन (मिलेनियम इकोसिस्टम इवैल्युएशन) के निदेशक मण्डल की ओर से वक्तव्य जारी किया गया है कि इस पृथ्वी के क्रियाकलापों में मानव की बढ़ती दखलंदाजी से अब यह दावा नहीं किया जा सकता है कि भावी पीढ़ी के लिये भी पृथ्वी की यही क्षमता कायम रह सकेगी। इन वैज्ञानिकों ने पाया है कि हमारी अर्थव्यवस्था को प्राकृतिक प्रणालियों से उपजी चौबीस प्रकार की सेवायें प्राप्त हो रही हैं। जैसे पीने का पानी, जलवायु का नियमन, प्राणवायु का निर्माण, ऊर्जा का प्रवाह, खाद्य श्रृंखला आदि, इस सेवाओं में से पन्द्रह को हम इनके स्थायीपन की सीमा से पीछे ढकेल चुके हैं। धरती पर तापमान बढ़ रहा है, वन तेजी से सिकुड़ रहे हैं, जनसंख्या और वाहन बढ़त बनाये हुए हैं। जैव विविधता को सहेजने वाली मूँगा चट्टानों का चालीस प्रतिशत पतन हो चुका है।

मानव सभ्यता के 10 हजार सालों में इतनी तपन कभी नहीं बढ़ी जो बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक और इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में महसूस की गई। तापमान बढ़ने से ग्लेशियर पिघल रहे हैं। समुद्री जल स्तर बढ़ रहा है। तबाही स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है। वैज्ञानिक इस ओर लगातार ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं जिसे अनदेखा करते हुए वोट की राजनीति के चलते तात्कालिक विकास की दृष्टि से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन निरंतर जारी है।

पृथ्वी का औसत तापमान 18वीं शताब्दी के बाद से अब तक 0.6 डिग्री सेंटीग्रेड तक बढ़ गया है जो सन् 2100 तक 9.58 डिग्री सेंटीग्रेड तक बढ़ जाने की सम्भावना है। हाल ही में संयुक्त महासचिव बान–की–मून ने कहा है कि जलवायु परिवर्तन से दुनियाँ को युद्ध जैसा ही खतरा है। जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर अपने भाषण में बान–की–मून ने कहा कि पर्यावरण में बदलाव भविष्य में युद्ध और संघर्ष की बड़ी वजहें बन सकते हैं। महासचिव ने विश्व में सबसे अधिक ग्रीन हाउस गैस छोड़ने वाले अमेरिका से अपील की, कि वह ग्लोबल वार्मिंग के खिलाफ अभियान का नेतृत्व करे। उन्होंने कहा कि मानव युद्ध से अधिक खतरा, ''ग्लोबल वार्मिंग'' से है, इसलिए पर्यावरण रक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समस्त राष्ट्रों के मध्य बेहतर समन्वय की जरूरत है।

ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के सबसे बड़े स्रोत कोयले से ऊर्जा (60 प्रतिशत), वनों का ह्रास (18 प्रतिशत), खेती (14 प्रतिशत), औद्योगिक प्रक्रियायें (4 प्रतिशत) और अपशिष्ट (4 प्रतिशत) है। विकासशील देशों में जहाँ विश्व की 80 प्रतिशत से अधिक आबादी निवास करती है 1751 से ग्रीनहाउस गैसों से उत्सर्जित भण्डार में सिर्फ 20 प्रतिशत का योगदान किया है। बड़े विकासशील देशों जैसे कि भारत, चीन, ब्राजील व दक्षिण कोरिया अभी भी प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन में विकसित देशों से कई गुना पीछे हैं। विश्व बैंक के अनुसार जहाँ विकसित देशों में प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति उत्सर्जन 13 टन है, विकासशील देशों में यह 3 टन से भी कम है। अमेरिका में प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन भारत की तुलना में 20 गुना अधिक है। विश्व में सिर्फ 15 प्रतिशत जनसंख्या के साथ अमीर देश कार्बन डाइऑक्साइड के 47 प्रतिशत से अधिक उत्सर्जन के लिये जिम्मेदार है।

250 वर्ष के विश्व इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया है कि अत्यधिक भोग ने भूमि का दोहन अन्तिम सीमा तक कर

लिया है। जिस मशीनी युग का विकास व्यक्ति के सुख के लिये किया गया है, वही उसके दुख का कारण बन गया है। प्रतिवर्ष 63000 वर्गमील जंगल नष्ट हो रहे हैं। सन् 2030 तक ऊर्जा की मांग 50 प्रतिशत तक बढ़ सकती है, जिसमें भारत और चीन की जरूरत सबसे ज्यादा होगी। विश्व का 40 प्रतिशत मीठा पानी वर्तमान में पीने योग्य नहीं रह गया है। विश्व के दो लाख लोग प्रतिदिन गाँवों या छोटे शहरों से बड़े शहरों की ओर जा रहे हैं। इससे भी पर्यावरण पर बुरा असर पड़ रहा है। इन्हीं समस्याओं को ध्यान में रखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने विभिन्न प्रयास किये जिसमें से सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य इस दिशा में एक नीतिगत कदम रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के वर्ष 2000 के सहस्त्राब्दी शिखर सम्मेलन में 2015 तक के लिये 8 वैश्विक विकास लक्ष्य निर्धारित किये गये थे। जिन्हें सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य (Millennium Development Goals MDGS) कहा जाता है। संयुक्त राष्ट्र के उस समय के 189 सदस्य राष्ट्रों तथा 22 अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने 2015 तक निम्नलिखित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये संकल्प लिया–

1– भुखमरी तथा गरीबी को समाप्त करना
2– सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा
3– लिंग समानता तथा महिला सशक्तीकरण
4– शिशु–मृत्यु दर घटाना
5– मातृत्व स्वास्थ्य को बढ़ावा देना
6– HIV/AIDS, मलेरिया तथा अन्य बीमारियों से छुटकारा पाना।
7– पर्यावरण सतत्
8– वैश्विक विकास के लिये सम्बन्ध स्थापित करना।

संयुक्त राष्ट्र ने सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्यों (एम0डी0जी0) को जिन उम्मीदों के साथ घोषित किया गया था, उसके एक दशक पश्चात् सभी सरकारी दावों के बावजूद नजर आता है कि विकास की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही त्रृटिपूर्ण थी। पिछले दस वर्षो में असंख्य समितियों, अन्तर्राष्ट्रीय एवं स्थानीय संगठनों एवं स्वतंत्र शोधकर्त्ताओं ने दिन रात एक करके चरम गरीबी और भूख, सभी को उपलब्ध प्राथमिक शिक्षा, लैंगिक समानता, शिशु मृत्यु आदि से सम्बन्धित सभी प्रकार के सूचकांक, संख्या, तालिका और आंकड़े इकट्ठा किये हैं।

आवश्यक नहीं है कि इन आँकड़ों से निकाले गए सभी निष्कर्ष भयंकर ही निकले हों। साथ ही संयुक्त राष्ट्र के सभी 192 सदस्य देशों द्वारा स्वीकार किये गये आठ अन्तर्राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों को सुनिश्चित करने में अथक रूप से जुटे सभी स्त्री, पुरूषों की विश्वसनीयता पर संदेह भी नहीं किया जाना चाहिये। ये वे लोग हैं जो मुद्दों को सामने लाए और आज भी कृत संकल्प होकर उन्हें पाने में जुटे हुए हैं।

विश्व के लगभग 85 करोड़ व्यक्तियों को स्वस्थ रहने के लिये पर्याप्त भोजन प्राप्त नहीं होता। इन लोगों को उचित भोजन उपलब्ध कराने के लिये खाद्यान्नों के उत्पादन को बढ़ाने के प्रयास में पर्यावरण प्रतिकूल गतिविधियाँ जहाँ एक ओर खाद्यान्न उत्पादन की समस्या को तात्कालिक रूप से हल करती हैं, वहीं दूसरी ओर पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने में व्यापक भूमिका निभाती हैं। बहुतों का मानना है कि जलवायु परिवर्तन के लिहाज से कृषि क्षेत्र सबसे ज्यादा परिवर्तनशील क्षेत्र है। जलवायु परिवर्तन कृषि, खाद्य सुरक्षा और एशियन पैसिफिक इलाके में रहने वाले करोड़ों ग्रामीणों की आजीविका के लिये एक चुनौती है। कृषि क्षेत्र जलवायु परिवर्तन के लिहाज से इसलिये भी संवेदनशील है क्योंकि ये पूरी तरह से जलवायु और मौसम पर निर्भर है, साथ ही शहरी इलाकों के मुकाबले ग्रामीणों के एवं विकसित देशों के मुकाबले विकासशील देशों की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था के चलते उनकी स्थिति और भी सोचनीय हो जाती है, अर्थात इन इलाकों में 60 फीसदी से ज्यादा आबादी सीधे तौर पर अपने जीवकोपार्जन के लिये कृषि पर निर्भर है।

स्टॉकहोम सम्मेलन की दसवी वर्षगाँठ पर नैरोबी सम्मेलन 1982 में पर्यावरण प्रदूषण के लिये गरीबी के साथ–साथ विलासितापूर्ण जीवन को भी जिम्मेदार माना गया है। इसके लिये एक नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना पर जोर दिया गया है। यह माना गया है कि पर्यावरणीय समस्यायें राष्ट्रीय सीमाओं के परे हैं। अतः इनका समाधान समय रहते अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से किया जाना चाहिये। पर्यावरणीय संरक्षण में विकसित देशों को विकासशील देशों को सहयोग देने की बात की गई है लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी समझ का अभाव रहा है जिससे पर्यावरण की समस्या एक समान संवेदना का विषय बनने के बजाय वैश्विक स्तर पर उत्तर–दक्षिण विवाद के रूप में प्रकट हुई है।

दूसरा सबके लिये प्राथमिक शिक्षा सुनिश्चित करना। इसके बारे में कहा जा सकता है कि हम सही राह पर हैं क्योंकि इसका मुख्य संकेतक है, स्कूलों में बच्चों के नामांकन, हालांकि उस शिक्षा की गुणवत्ता को लेकर तमाम तरह की चिन्तायें जतायी जा रही हैं। गुणवत्ता में सुधार की बात की जाये तो उसे अगले लक्ष्य में शामिल किया जा सकता है।

शैक्षणिक पाठ्यचर्या में पर्यावरणीय गतिविधियों के उन्नयन के बारे में तथा स्वच्छ पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले तत्वों की तरफ विशेष ध्यान दिलाकर सतत् विकास को मजबूती प्रदान की जा सकती है।

तीसरा प्रत्येक स्तर पर लैंगिक समानता एवं महिला सशक्तिकरण ने पर्यावरण नारीवाद के वैचारिक आयामों को गतिशील किया है। इस विचारधारा के चिन्तकों का मानना है कि महिलायें पर्यावरण के सबसे नजदीक हैं तथा पर्यावरण संरक्षण में एक अहम भूमिका निभाती हैं, परन्तु वर्तमान विकास नीतियों में उनको कोई स्थान नहीं दिया जाता जिसका सीधा प्रभाव पर्यावरण के प्रति नकरात्मक रहा है। इस श्रेणी में वंदना शिवा जैसी पर्यावरण नारीवादी मानती है कि प्रजनन, पालन पोषण, सम्पोषण, जड़ से जुड़े रहना जैसे गुण ही शायद महिलाओं को पुरूषों से बेहतर और अलग बनाते हैं। इस अर्थ में पर्यावरण–नारीवादी उन नारीय गुणों का बखान करते हैं जिनका पितृसत्ता नामक विचार प्रवृत्ति एवं संस्था ने उपहास उड़ाया है और महिला को कमजोर के रूप में चित्रित किया है। इस तरह से पर्यावरण नारीवादी मानते हैं कि महिलाओं को अपने लैंगिक गुणों पर गर्व करना चाहिये और अपने को एक अपराधी मानने के बजाय कर्त्ता मानना चाहिये। संयुक्त राष्ट्र ने 6 जुलाई 2015 को सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य रिपोर्ट 2015 जारी किया, जिसमें यह बात स्पष्ट रूप से उल्लिखित की गयी है कि जितनी तेजी से लैंगिक समानता बढ़ेगी उतनी ही गति से महिला सशक्तीकरण को बल मिलेगा, फलस्वरूप पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता में भी वृद्धि होगी।

चौथा शिशु मृत्यु दर को घटाकर 2/3 तक कम करना प्रमुख लक्ष्यों में से एक रहा है। इस लक्ष्य के माध्यम से उन्नत मानव संसाधन की प्राप्ति कर मानव एवं पर्यावरण के मध्य संवेदनशील सम्बन्धों का विकास किया जा सकता है। क्योंकि सृष्टि के जीवों में मानव एक मात्र प्राणी है जिसे वह योग्यता प्राप्त है कि वह आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और तकनीकि क्रिया के द्वारा पर्यावरण के भौतिक परिवेश में परिवर्तन करके सांस्कृतिक परिवेश की रचना करता रहा है।

पाँचवा मातृत्व स्वास्थ्य को बढ़ावा देना पर्यावरणीय दृष्टि से भी एक महत्त्वपूर्ण कारक है। छठा HIV/ADIS, मलेरिया तथा अन्य बीमारियों से छुटकारा पाना जिससे उन्नत मानव संसाधनों का विकास कर मानव एवं पर्यावरण के मध्य सकारात्मक गतिशीलता में वृद्धि की जा सकती है। विकासशील देशों में ऐसी समस्यायें गरीबी एवं बेरोजगारी को जन्म देती हैं, जो अन्ततः पर्यावरण के प्रति असंवेदनशील रवैया अपनाती हैं।

सातवाँ, पर्यावरण की सतत्ता सुनिश्चित करना, सतत् विकास सामाजिक आर्थिक विकास की वह प्रक्रिया है जिसमें पृथ्वी की सहनशक्ति के अनुसार विकास की बात की जाती है। यह अवधारणा 1960 के दशक में तब विकसित हुई जब लोग औद्योगीकरण के पर्यावरण पर हानिकारक प्रभावों से अवगत हुये। सतत् विकास, विकास का उद्भव, प्राकृतिक संसाधनों की समाप्ति तथा उसके कारण आर्थिक क्रियाओं तथा उत्पन्न प्रणालियों के धीमे होने या उनके बंद होने के भय से हुआ। यह अवधारणा उत्पादन प्रणालियों पर नियंत्रण करने वाले कुछ लोगों द्वारा प्रकृति के बहुमूल्य तथा सीमित संसाधनों के लालचपूर्ण दुरूपयोग का परिणाम है। सतत् विकास कोयला, तेल तथा जल जैसे संसाधनों के दोहन के लिये उत्पादन तकनीकों, औद्योगिक प्रक्रियाओं तथा विकास की न्यायोचित नीतियों के सम्बन्ध में दीर्घकालीन योजना प्रस्तुत करता है।

1972 में स्वीडन की राजधानी स्टॉकहोम में पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन का आयोजन हुआ। पहली बार विश्व समुदाय में इस बात पर सहमति हुई कि पर्यावरण संकट एक गम्भीर मुद्दा है। इस सम्मेलन के माध्यम से 'संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम' की स्थापना हुई। सतत् विकास की सुपरिभाषित अवधारणा का विकास सबसे पहले 1987 में ब्रूंट्सलैण्ड आयोग की रिपोर्ट 'अवर कामन फ्यूचर' के प्रकाशन के साथ हुआ, उसने सतत् विकास को ऐसा विकास कहा 'जो भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति से समझौता किये बिना वर्तमान की आवश्यकताऐं पूरी करता है।'' इस रिपोर्ट में कहा गया है कि विकास हमारी आज की जरूरतों को पूरा करे, साथ ही आने वाली पीढ़ियों की जरूरतों की भी अनदेखी न करे। आयोग का कहना है कि 'सतत् विकास' न केवल पर्यावरण से सामंजस्य लाना है बल्कि यह एक परिवर्तन की प्रक्रिया है जिसमें संसाधनों का दोहन, निवेश की दिशा, तकनीकि विकास की स्थिति तथा संस्थात्मक परिवर्तनों को वर्तमान के साथ–साथ भविष्य की आवश्यकताओं के भी अनुकूल बनाया जा सके। यह आर्थिक विकास की दौड़ के प्रति विश्व को सचेत करता है ताकि विकास तो हो परन्तु बिना प्राकृतिक संसाधनों की समाप्ति अथवा पर्यावरण को क्षति पहुँचाये।

अतः सतत् विकास मनुष्य और उसके पर्यावरण के अन्तर्राष्ट्रीय बताते हुये चेतावनी देता है कि मनुष्य पर्यावरण की कीमत पर विकास नहीं कर सकता क्योंकि इसमें अन्ततः मनुष्य की ही हार है। सतत् विकास प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, ऊर्जा, कचरे तथा परिवहन के प्रबन्ध को प्रोत्साहन देता है। सतत् विकास उत्पादन व उपभोग के उन आदर्शों पर आधारित विकास है जो भविष्य में पर्यावरण को नुकसान पहुँचाये बिना किया जा सकता है। इसका उद्देश्य आर्थिक गतिविधि के लाभों का समाज के सभी वर्गों में समान वितरण, मानव जाति की भलाई तथा स्वास्थ्य की रक्षा करना व गरीबी मिटाना है। यदि सतत् विकास को सफल होना है तो उसके लिये आवश्यक है कि हमारी वर्तमान जीवन शैली तथा पर्यावरण पर उसके प्रभाव के सम्बन्ध में व्यक्तियों तथा सरकारों के दृष्टिकोणों में सुधार हो।

आठवाँ वैश्विक विकास के लिये सम्बन्ध स्थापित करना, सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्यों की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की दिशा में 'अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग' या 'वैश्विक साझेदारी' बढ़ाने के लिये एक महत्त्वपूर्ण कदम है। आज वैश्विक चुनौतियों का सामना करने के लिये राष्ट्रों के मध्य रचनात्मक सम्बन्ध विकसित करना होगा एवं वैश्विक समुदाय को 'खगोलीय मानव' एवं 'विश्व सभ्य समाज' की ओर उन्मुख करना होगा, ताकि एक न्यायपूर्ण विश्व एवं भेद–भाव रहित आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की जा सके और हम शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व का आदर्श लक्ष्य प्राप्त कर सके।

आज अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में बढ़ती वैश्विक साझेदारी व सहयोग ने पर्यावरण संरक्षण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी है। यह उन अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों से भी प्रमाणित होता है जिनमें विश्वभर के राजनीतिक नेताओं ने पर्यावरण रक्षा के प्रति अपनी चिंता तथा इस दिशा में किये जाने वाले प्रयत्नों के प्रति अपने समर्थन को दोहराया है। पर्यावरण संरक्षण में गैर–सरकारी संगठन भी महत्त्वूपर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इनके प्रयासों से पर्यावरण संरक्षण ने एक आन्दोलन का रूप ले लिया है, यद्यपि कई बार उत्तर–दक्षिण विवाद इस वैश्विक सद्भाव को बिगाड़ने का काम करता है लेकिन पर्यावरणीय परिवर्तन की गम्भीरता को देखते हुये आज आवश्यकता है कि विकसित देश इस दिशा में सार्थक भूमिका निभायें।

निष्कर्ष :–

पर्यावरण परिवर्तन के सम्बन्ध में वैश्विक तापमान में वृद्धि एक वैश्विक समस्या है तथा वैश्विक समुदाय के आत्मीय एवं उदार सहयोग के बगैर हम इस समस्या से उबर नहीं सकते, एक तरफ जहाँ सहस्त्राब्दी विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये तीव्र औद्योगिक विकास की आवश्यकता पड़ेगी, वहीं यह तीव्र औद्योगिक विकास पर्यावरणीय असंतुलन को जन्म देगा। ऐसी परिस्थिति में विकास को तो 'ईको फ्रेण्डली' बनाना ही होगा, साथ ही अपनी ऊर्जा जरूरतों में कमी लाकर ऊर्जा खपत को भी कम करना होगा। यद्यपि यह सच है कि उद्योग विकास का पर्याय होता है, किन्तु इसके लिये पर्यावरण की कीमत न चुकानी पड़े, इसका ध्यान सुरक्षित भविष्य के लिये रखना नितान्त आवश्यक है। यह समय की मांग है कि वैश्विक समुदाय अब ऊर्जा जरूरतों की पूर्ति के लिये ऊर्जा के अक्षय व नवीकरणीय स्त्रोतों पर अपना ध्यान केन्द्रित करे तथा पर्यावरण को स्वच्छ रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली 'ईको फ्रेंडली' तकनीकि का परस्पर साझा अनुप्रयोग करे, जिससे विकासशील देश भी स्वच्छ पर्यावरण के लिये नवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोतों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकें, साथ ही सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्यों की जिस रचनात्मक संकल्पना को अपनाया गया था, उनमें से एक पर्यावरणीय सतत्ता को भी सुनिश्चित किया जा सके तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के माहौल को भी खुशनुमा बनाया जा सके।

सन्दर्भ सूची

1. डा0 बिस्वाल तपन, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम : रियो, जोहान्सबर्ग, वीवा, नई दिल्ली–2008
2. जैन अशोक, लॉ एण्ड एनवायरमेंट, एजेण्ट, 2005
3. सिंह जगदीश, पर्यावरण एवं संविकास, 2005
4. स्टॉकहोम, 1972, यू0एन0ई0पी –222
5. पर्यावरण संकट : एक चुनौती, रोजगार समाचार, 30 मई–5 जून, पृ 23
6. बाली क्लाइमेट डील : हिन्दुस्तान टाइम्स, 16 दिसम्बर, 2007 पृ 18
7. वर्ल्ड फोकस : जनवरी 2014

8- Dev. S. Mahendra, 2011, Climate Change, Rural Livelihoods and Agriculture (Focus of Food Security) in Asia Pacific Region. Indira Gandhi Institute of Development Research, Mumbai. IGIDR Publication- WP- 2011-14.

9- Climate change : www.practicalaction.org/climate change.

10- The Journal of Environment Development, 2012.

11- UNEP-UNDP -2011 Mainstreaming Climate Change adaptation into development planing : a guide for practitioners. UNDP-UNEP Poverty environment initiative. UNEP- UNDP Publication.